Sep 8th 57

ुष्य बनो

२१५९

बा०म०
५-२५

शुभ संकल्प,

प्रेम,

ब्रह्मचर्य पालन,

कीरचन्दजी महाराज

मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

—❀ विषय सूचा ❀—

सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	हमारी बात	मैनेजर	२
२	स्तुति	....	३
३	दातादयाल के सतसंग के वचन देहरादून में	....	४
४	सन्त वाणी	....	७
५	रक्षा बन्धन	फ़क़ीर साहब	८
६	गुरु की वाणी	....	१०
७	दाता दयाल के सत्संग के वचन	....	११
८	मनुष्य की उत्पत्ति और उसके कार्य	फ़क़ीर साहब	१२
९	मान का अङ्ग	नन्दूभाई की साखी	२१
१०	बड़ों का विनोद हास्य	....	२१
११	प्राक्कथन	पं० यादरामजी शर्मा	२३
१२	ग़ज़ल	.....	२५
१३	जागृति जीवन	....	२५
१४	ग़ज़ल नन्दूभाई महाराज	नन्दूभाई	२९
१५	कबीर अष्टक	श्री रामसिंह अलीगढ़	२९
१६	प्रसन्नता का रहस्य	महर्षि जी महाराज	३१
१७	दाता दयाल और परमदयाल	....	३५
१८	ग़ज़ल दातादयाल	नन्दूभाई जी	३६
१९	ग़ज़ल पीरे मुग़ां साहब	....	३६
२०	भगवान के अनन्य भक्त रूप और सनातन	....	३८
२१	आगमी दशहरे का सत्संग दहली में	फ़क़ीर साहब	४६

हमारी बात

हो सबका कल्यान, भावना ऐसी रहे हमेश ।
भाई चारे का नाता हो, है यह गुरू आदेश ।।

इसी आदेशानुसार यह कार्य हम सात वर्ष से करते चले आरहे हैं। इस कार्य के करने में जो प्रसन्नता हमें मिलती है, वह हम ही जानते हैं। अथवा वह जानते होंगे जिनके हमारे जैसे विचार हों दिल को दिल से राहत है।

मन मगन रहते हैं 'खुशदिल', मिल गया है राज़े हक़ ।
मुम्किनाते हरदो आलम, सब हमारे दिल में है ।।

गुरु की हम पर दया है, मेहर और कृपा है। यदि वह न होती तो हम कदापि भी यह काम न कर सकते थे। "करे करावे आप ही आप। मानुष के नाहिं कुछ भी हाथ।" हमें प्रसन्नता है कि काग़ज की इस मँहगाई और कठिनाई में भी हम अपने इस वर्ष को कुशलता पूर्वक समाप्त कर रहे है। और अपने प्रेमी पाठकों के ऋण से उऋण जिन्होंने कि अपना वार्षिक मूल्य भेज दिया है उनको धन्यवाद है किन्तु खेद है कि अभी तक आधे ग्राहकों की संख्या ऐसी है जिन्होंने अपना वार्षिक मूल्य नहीं भेजा है। उनके विषय में हम क्या कहें। वह हमारे ऋणी हैं। चूँकि आगामी अङ्क अक्टूबर का विशेषाँक होगा। इसलिये हमारी प्रार्थना है कि जो सज्जन ग्राहक न रहना चाहें वह एक पोस्टकार्ड लिख कर हमें सूचित करदें। जिससे कि उन्हें पत्रिका न भेजी जाय। बिना सूचना मिले हम क्या करें किसको भेजें किसको न भेजें। प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि अपना वार्षिक मूल्य ३) अक्टूबर में ही भेज दें गे। और दो दो नवीन ग्राहक बनाकर अपने प्रेम का परिचय दें गे। यह तो सबका ही काम है। यही भाईचारा है। आप हमारे काम आइए। हम आपके काम आयेंगे। कर भला होगा भला। अन्त भले का भला। सत्गुरु सबका कल्यान करे।

R. S.

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदंपूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ७ . | भाद्रपद सं० २०१६ सितम्बर १९५९ | सं० १२/८४

❀ स्तुति ❀

धन्य धन्य गुरुदेव जी, जिन भेद बताया ।
अपनी दया अपार से, भव पार कराया ॥
शरणागत की लाज काज, स्वामी जग आए ।
जड़ चेतन की ग्रन्थी सब, निज युक्ति छुड़ाए ॥
माया काल कराल कोई, बचने नहिं पावे ।
कर्म धर्म के जाल जीव, निस बासर आवे ॥
भोगे कष्ट अपार, ताप त्रय दहे शरीरा ।
दारुन विपति कलेश भया, मन बिकल अधीरा ॥
डूबत भव जल माँहि, नहीं कहूँ ठौर ठिकाना ।
गुरु ने पकड़ी बांह दिया, भक्ती धन दाना ॥
चरन कँवल का आसरा, हित चित्त बसाऊँ ।
निरखूँ रूप अनूप, ध्यान गुरु मूरत लाऊँ ॥
गुरु की निसदिन बन्दगी, गुरु चरनन पूजा ।
गुरु सम लोक प्रलोक में, मानूँ नहिं दूजा ॥
गुरु मेरे जान प्राण, गुरु मेरे रखवारे ।
रात दिवस मैं जिऊँ, गुरू के चरन सहारे ॥
भक्ति दान गुरु दीजिए, देवन के देवा ।
राधास्वामी दयाल, करूँ मैं तुम्हरी सेवा ॥

ही पूर्ण विश्वास है। उसको भय रहता है और विरोधियों से भयातुर है कि कहीं कोई अप्रसन्न न हो जाय। उसको भय है कि कहीं बदनामी का टीका माथे पर न लग जावे। वह पत्नी, सम्बंधी, कुटुम्बी, समाज और पूर्वजों की मान प्रतिष्ठा का बहुत कुछ बिचार रखता है किन्तु इतना उसको अपने आइडियल का बिचार नहीं है। यह कारण है कि उसको सफलता नहीं प्राप्त होती। सफलता वास्तव में वहां प्राप्त होती है जहाँ प्राणी खुल खेलता है। उसकी दृष्टि केवल अपने लक्ष्य की ओर रहती है। रात दिवस उसी की धुन, सोते जागते उसी का विचार, उठते बैठते उसी का वर्णन, लक्ष्य उसके कण कण में प्रवेश कर जाता है। ऐसा व्यक्ति कभी भी असफल नहीं होता। जो एक सिर और सहस्र सौदे के बंधन में बँधा रहे वह किस प्रकार सफलता का मुँह देख सकता है। जब तक वाह्य जगत की सामिग्री से सिर टकराते रहोगे और जब तक लोक लाज, जनता की सम्मति और संसार के भय की चिन्ता है तब तक तुम कभी भी सफल न हो सकोगे। सबको छोड़कर केवल अपने एक आदर्श की ओर झुको और तुम देखोगे कि सफलता क्यों नहीं प्राप्त होती। एक को जानो, एक को पढ़ो, एक की वार्तालाप करो, एक का साधन और अभ्यास और एक ही आदर्श हो, उस समय आत्मा के आवरण शीघ्रातिशीघ्र दूर होते चलेंगे और तुम अपने लक्ष्य को इसी जीवन में प्राप्त कर लोगे। किसी के कहने सुनने और वार्तालाप की आवश्यकता ही शेष न रह जायगी।

एक नाम को जानकर दूजा दिया बहाय।
जप तप तीरथ वृत नहीं सतगुरु चरन समाय॥
सब आये उस एक में डाल पात फल फूल।
अब कहौ पाछे क्या रहा गह पकड़ा जब मूल॥

यह मूल, यह जड़, यह आइडियल तुम्हारा अपना इष्ट है

जीवन में दौड़ धूप की, योग, ज्ञान, समाधि, कर्म सत्यता, भलाई आदि के भावों में ग्रस्त रहा, इन सम्पूर्ण भाव विचारों से किसने निकाला ! सच पूछते हो तो आप सज्जनों ने। आपके निज अनुभवों, बातों और निरीक्षणों ने मुझे रहस्य का पता दिया। वास्तव में संस्कार तो दातादयाल का ही था, उन्होंने मुझे इस काल कर्म से छुटकारा दिलाने के लिए यह सतसङ्ग का कार्य तथा नाम दान मुझे सौंपा था और आदेश दिया था "फ़क़ीर तू यह न समझना कि तू किसी का बेड़ा पार करेगा बल्कि सतपुरुष राधास्वामी दयाल, सतगुरु स्वरूप के दर्शन तुमको सतसङ्गियों के रूप में होंगे।"

उनकी वाणी सत्य निकली। मैं चाहता हूं कि जिस प्रकार मैं निबन्ध, मुक्त, सुखी, शान्ति, निर्भ्रान्त होगया हूँ आप सज्जन भी मेरी भांति हो जाँय और इस जगत में रहते हुए जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त करलें। मृत्यु के पश्चात् क्या होगा मैं क्या कह सकता हूँ अनुमान और प्रमाण ही हैं। प्रत्यक्ष कुछ कहने का साहस नही करता हूँ। अहा !

सुखी रहे संसार सारा यह दुआ देता हूँ मैं।
है यह इच्छा सच्चे दिल से, होश में करता हूँ मैं॥
इन्सानी जिन्दगी बेबसी में है भरम और अज्ञान से।
इसकी बहतरी के लिए जिन्दगी में काम करता हूँ मैं॥
दुनियां वालो यक़ीन करो कि मैं हूँ आप्त पुरुष।
जो सचाई से अनुभव किया निर्भय होकर कहता हूँ मैं॥
करम के भोग वश या मौज के आधीन जानलो।
इन्सानियत के दौर को लाने की इच्छा रखता हूँ मैं॥
सतसंग मेरा करो बात समझो और भेद लो।
फिर इस भेद के आसरे अपना जीवन बसर करो॥

यह वास्तविक गुरू भक्ति है। दशहरे पर दहली के सतसङ्ग

में आओ और अपना काम बनाओ। जीवन प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत करो।

गुरु की वाणी

भूला फिरता है दीवाने, दिल की तुझको खबर नहीं।
भेद हरी का क्यों तू पावे, दिल में अपने गुज़ार नहीं॥
जंगल जंगल सहरा सहरा, दश्तो व्याबाँ फिरता है।
परदों में दिल के दख़ल नहीं, गर तुझमें सच्चा हुनर नहीं॥
दिल में तेरे बाग़ बग़ीचे, दिल में लगी है फुलवारी।
दिल में नदी नाले हैं तेरे, दिल से बाहर नहर नहीं॥
पीरो पैग़म्बर कुतुब औलिया, दिल में तेरे बसते हैं।
तेरे दिल में है मन्दिरो काबा, इल्म तुझे है मगर नहीं॥
तेरे दिल में सात समन्दर, दम दम लहरें लेते हैं।
आजा ग़ोता लगा ले इसमें, इससे बहतर लहर नहीं॥
क्या तू ढूँढ़े है मतवाले, किसकी तलाश तुझे भाई।
तेरे अन्दर है सब कुछ और, इसकी तुझको ख़बर नहीं॥
सूरज चाँद सितारे लाखों रोशन हैं दिल के अन्दर।
नूर खुदा का तुझमें छुपा है, देख देख क्या वशर नहीं॥
वेद कुरान के भूल भ्रम में, फँसा हुआ है क्यों नाहक़।
आजा दिल की राह में इस दम इससे बहतर डगर नहीं॥
पीर तरीक़त ने यह बताया, मन की निरख परख कर ले।
मन को देख देख तू मन को, मन से सुन्दर नगर नहीं॥

नहीं सुनता सन्तों की कोई सदायें।
इन्हें आगईं ग़ैर मुल्की अदायें॥
ख्यालों की रौ में बहे जा रहे हैं।
नहीं मन को क़ाबू में यह ला रहे हैं॥
सन्तों की तालीम दिल से भुलादी।
यह आज़ादी खुशदिल है कैसी आज़ादी॥

कभी कभी दर्शन दिया करते हैं। आपने प्रश्न किये हैं कि मनुष्य सर्व प्रथम किस प्रकार उत्पन्न हुआ, कहाँ हुआ और उसको क्या करना चाहिये ?

प्रश्न वास्तव में अनोखे हैं। क्या इनका कोई उत्तर दे सकता है ? मुझे नहीं पता किन्तु मैं उत्तर देने का साहस करता हूँ। मेरा उत्तर ठीक है अथवा नहीं इसका मुझे दावा नहीं है। मेरा उत्तर किसी पुस्तक अथवा किसी लेख पर आधारित नहीं है वरन् अपने जीवन के अनुभवों का परिणाम है। भविष्य में निर्णय होगा कि मेरा उत्तर कहाँ तक उचित है। मुझ को अपने उत्तर से संतोष है वह भी पूर्णतः नहीं वरन् ९० प्रतिशत। मैं उत्तर देने से पूर्व जीवन के अनुभवों के उदाहरण प्रेषित करता हूँ जिनसे आप सज्जनों को निश्चय हो जायगा कि मेरा उत्तर ठीक है।

१—पाँच वर्ष व्यतीत हुए कि एक सज्जन पं० यादवराम जो टप्पल में अध्यापक हैं वह विद्वान भक्त और महात्मा हैं। उन्होंने दयालधाम अलीगढ़ के सतसङ्ग में मेरे सम्मुख वर्णन किया था कि उन्होंने और एक कबीर पंथी साधू ने मुझको जागृत अवस्था में यमुना नदी की रेती में टप्पल के निकट देखा था। और वर्णन करते हैं कि उन्होंने मुझसे यह प्रश्न भी किया था कि महाराज आपका कोई प्रोग्राम मनुष्य बनो पत्रिका में इस ओर आने का नहीं प्रकाशित हुआ आप अक्समात् किस प्रकार यहाँ पधारे और फिर उन्होंने वर्णन किया कि मैंने उत्तर दिया था कि मैं होशियार पुर में नहीं रहता हूं वरन् जिस स्थान पर मुझे कोई स्मरण करता है वहां प्रगट हो जाता हूँ। मैंने आज्ञा दी थी कि वह तुरन्त अपने निवास स्थान को लौट जांय।

मैंने शपथ पूर्वक वर्णन किया कि इस घटना से मैं नितान्त अनभिज्ञ हूँ और न मैं वह फ़क़ीरचन्द था और न मैं वहाँ उस समय गया था।

इसके पश्चात उन्होंने सतसंग में प्रश्न किया कि महाराज फिर वह कौन था जिसने उनको आपके रूप में दर्शन दिये। महाराज आप सत्यवादी हैं किन्तु वह भी तो झूँठ नहीं बोलते। मैंने उनसे सब वृतान्त का व्यौरा पूछा कि उनके वहां जाने का कारण क्या था तो ज्ञात हुआ कि वह साधन और अभ्यास के क्रम से प्रातः काल ही एक कबीर पंथी साधू के साथ अपने निवास स्थान से चल दिये थे और उनकी स्त्री ने यह समझकर कि वह अप्रसन्न होकर गये थे चिन्ता प्रगट की थी और मेरे फोटो के सम्मुख बैठकर प्रार्थना करती हुई अचेत हो गई क्योंकि वह उस मालिक को मेरे रूप में मानती थी इस कारण उसकी प्रबल इच्छा के अन्तरगत कि उसका पति अपने निवास स्थान को लौट आये उसके विचार ने मेरा रूप धारण करके यादवराम को लौटने के लिये आदेश दिया था और जब यादवराम अपने निवास स्थान पर पहुँचे तो उनकी पत्नी उसी अचेतन्यता की दशा में पड़ी हुई थी।

२—मैं रेलवे स्टेशन कुंदियाँ जँकशन पर सहायक स्टेशन मास्टर था। रात्रि के समय अत्यन्त अंधकार था और तीन रेल गाड़ियों का मिलान था जिनमें से दो सवारी गाड़ियाँ और तृतीय माल गाड़ी थी। स्टेशन (Nan–Inetrlock) नन-इंटर लौक था कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता था। मैंने घबराकर दातादयाल जी को स्मरण किया और फिर मुझे कुछ सुध नहीं रही। जब चेतन्यता हुई तो ज्ञात हुआ कि सब गाड़ियाँ अपनी अपनी लाइन पर स्टेशन पर आगईं थीं। संचालकों से ज्ञात हुआ कि सम्पूर्ण स्टेशन के कर्मचारी गाडियों को पाइलौट करके ले आये हैं। यद्यपि कि कर्मचारियों ने वर्णन किया कि उनको कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता था और इस घटना से अनभिज्ञ हैं।

३—हैदराबाद की ओर एक अध्यापक की पत्नी को बारह वर्ष से भूत प्रेत का आक्रमण होता है। किसी के परामर्श से उसने मुझको पत्र लिखा और मैंने उनका विश्वास देखकर उत्तर दे दिया कि अब जब भूत प्रेत का आक्रमण हो तो मेरे अमुक चित्र को धूप देकर उसके सम्मुख रख देना। वह वर्णन करते हैं कि जब आक्रमण हुआ तो उसकी पत्नी और दो स्त्रियों ने मुझको देखा और मैंने एक झाड़ू लेकर उस प्रेत को मारा और वह भूत इमली के वृक्ष पर चढ़ गया और फिर मैंने इमली के वृक्ष पर चढ़कर उसको झाड़ू से मारा। इसके पश्चात फिर आज तक उसको वह पीड़ा नहीं हुई किन्तु मैं इस घटना से नितान्त अनिभिज्ञ हूँ।

अब इन घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि प्राणी के विचार में यह शक्ति है कि वह स्थूल शरीर जो अन्य व्यक्तियों को जाग्रत अवस्था में भी दृष्टिगोचर होजाय धारण कर सकता है। इसलिये मेरे अनुभव में सर्व प्रथम मनुष्य किसी महान मानव शक्ति जिसमें शरीर, मन और आत्मा है उसकी विचार शक्ति का परिणाम है।

प्रश्न—वह महान मानव शक्ति कौन है?

उत्तर—सोहं पुरुष! जिसको सन्तमत वाले काल भगवान का नाम देते हैं शास्त्रकार संभवतः इसी को सोहं पुरुष कहते हों। यह स्थूल पदार्थ का जगत जो विराट पुरुष है, उसका शरीर है। मन अव्याकृत है उसकी आत्मा हिरण्यगर्भ है। दूसरे शब्दों में यह विराट पुरुष (स्थूल पदार्थ अव्याकृत (संकल्प मय जगत) हिरण्य-गर्भ (परमात्मा) उस पुरुष के अस्तित्व हैं। सन्तों ने जो व्या-ख्या की है, उसके अनुसार सोहं पुरुष सुन्न, महासुन्न, त्रकुटी और सहस दल कँवल की मिश्रित अवस्था का नाम है। वास्तव में यह काल है और उसके संकल्प माया कहलाते हैं और सबकी स्थूल प्रकृति की रचना विराट पुरुष है।

प्रश्न—कोई प्रमाण है कि हम मानें कि वह बड़ा पुरुष है ?

उत्तर—हाँ ! वर्तमान विज्ञान किसी सीमा तक सिद्ध करता है। इस विराट पुरुष में यह समस्त सूर्य, चन्द्र, तारागण और यह भू मण्डल विद्यमान है। इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता है। और इस भू मण्डल की गति किसी नियम पर आधारित है। शरीर के समस्त अङ्ग आपस में गुथे हुए हैं। इसी प्रकार इस विराट पुरुष के समस्त लोक लोकान्तर आपस में गुथे हुए हैं। प्रत्येक का कार्य यद्यपि प्रथक प्रथक है किन्तु एक दूसरे पर आधारित है।

जहाँ शरीर है वहाँ मन और आत्मा का होना अनिवार्य है। प्राणी में शरीर, मन और आत्मा तीनों हैं। इसलिए इस बड़े पुरुष में अर्थात् काल भगवान में शरीर, मन और आत्मा का होना अनिवार्य है। यही प्रमाण मैं दे सकता हूँ।

प्रश्न—तो प्रथम मानव आपके विचार के अनुसार उस बड़े पुरुष (सोहं पुरुष) के सङ्कल्प का परिणाम है ?

उत्तर—हां ! जिस प्रकार उस यादमराम की पत्नी के विचार ने अथवा हैदराबाद वाली स्त्री के सङ्कल्प ने फ़क़ीरचन्द को बना कर सम्मुख खड़ा कर दिया। इसी प्रकार उस सोहं पुरुष के सङ्कल्प ने रचना के क्रम में अपने रूप पर मनुष्य को बनाया और उसमें वह सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे जो सोहं पुरुष में थे और फिर आदि मनु अर्थात् सर्व प्रथम मनुष्य ने अपने सङ्कल्प से अपने मनोरंजन के लिए स्त्री को उत्पन्न किया और फिर रचना का क्रम चल निकला। हम भी अपने संकल्प से आकृतियाँ बनाकर मानसिक आनन्द लेते हैं। संकल्प तथा बिचार चूँकि प्रकाश से निकलता है और जब प्रकाश निर्बल (हीन) होजाता है तो संकल्प भी निर्बल (हीन, होजाता है। इसलिए जब तक प्रकाश की शक्ति बलवान थी, मानसिक रचना होती रही। इसके उपरांत

मैथुनी सृष्टि हुई। अब भी ऐसी ही घटनायें होती रहती हैं, जहाँ बिना भोग के स्त्रियों के सन्तान उत्पन्न हुई।

मैंने समाचार पत्र में भी पढ़ा था। आयुर्वेदिक के ग्रन्थों में भी ऐसा उल्लेख है। इसके अतिरिक्त ज्ञात हुआ है कि ईसामसी की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई थी। क्या आश्चर्य कि महारानी कुन्ती की कोख से दानी कर्ण का जन्म भी इसी सिद्धान्त पर हुआ है। इन उदाहरणों से मैं यह निश्चय कराना चाहता हूँ कि इस मनोमय जगत में सब कुछ सम्भव है। और इसीलिये मनुष्य की उत्पत्ति उस महान् पुरुष (सोहं पुरुष) की संकल्प शक्ति से हुई। मेरा ऐसा अनुभव है।

प्रश्न—कहाँ हुई ?

उत्तर—जब विराट पुरुष की रचना पूर्ण हो गई तब शरीर धारी के संकल्प के बिना संकल्प शरीर नहीं बना सकता। क्योंकि यदि बनायगा तो वह शरीर आकार वाला न होसकेगा। यह हो सक्ता है कि वह कल्पित बातें करे। जैसी कि हम भी स्वप्न अवस्था में बातें करते हैं। इसलिये इस पृथ्वी के मनुष्य की उत्पत्ति केवल इस भूमंडल पर ही हो सक्ती है और किसी स्थान पर नहीं और न यह मानव शरीर सहित किसी अन्य मंडल में जा सकेगा। यद्यपि वर्तमान विज्ञान प्रयत्न शील है। समय बतायेगा। वर्तमान विज्ञान की पहुँच स्थूल पदार्थ तक ही सीमित है। सम्भव है कि भविष्य में और उन्नति कर जावे।

इस भूमंडल में भी वह स्थान होना चाहिए जो समुद्र के मध्य में प्रथम भूमि थी। जहाँ तक मेरा विचार है संभव है यह हिमालय का शिखर सर्व प्रथम प्रकाश में आया हो। मैं कह नहीं सक्ता हूँ किन्तु विचार है कि सर्व प्रथम मानव की उत्पत्ति ऐसे ही स्थान पर हुई होगी।

प्रश्नः—कब हुई ?

उत्तर—चूँकि सोहं पुरुष ने अपने ही रूप और गुण के अनुसार मनुष्य को बनाया। इसलिये मेरे विचार में चूँकि मनुष्य के शिशु की उत्पत्ति में लगभग ९ तथा १० मास लगते हैं। इसलिये पृथ्वी की उत्पत्ति के अधिक समय के पश्चात् मनुष्य की उत्पत्ति होनी चाहिये। प्रथम अन्य जीव जन्तु खाद्य पदार्थ, बनस्पति आदि की उत्पत्ति के पश्चात् मनुष्य की उत्पत्ति का होना अनिवार्य है। रहा समय का प्रश्न लाखों वर्ष पहले का समय होना अनिवार्य है। शास्त्र वर्णन करते हैं कि ब्रह्मा का एक दिवस इस जगत के सहस्रों वर्षों के समतुल्य होता है। मेरे विचार में यह संसार अथवा रचना अर्थात् हमारा भूमंडल अनादि नहीं है इसकी उत्पत्ति हुई है और इसकी प्रलय हो जावेगी और यह सोहं पुरुष भी अनादि नहीं है।

प्रश्न—आपने सर्वथा उलटी बात कही है? सोहं पुरुष भी अनादि नहीं है?

उत्तर—क्या करूँ जीवन का अनुभव ऐसा ही मानने को विवश कर रहा है। हमारा शरीर, हमारा मन और हमारी आत्मा यह सब नाशवान हैं। मैं प्रत्येक दिन अपने आपको इनसे प्रथक् कर करके अनुभव करता रहता हूँ। रहा यह प्रश्न कि और किसी ने ऐसा नहीं वर्णन किया है यह भी असत्य है। सार वचन पद्य में उत्पत्ति और प्रलय के प्रसङ्ग में स्वामी जी ने स्पष्ट कहा है कि यह सोहं पुरुष (भंवर गुफ़ा) को भी प्रलय है।

प्रश्न—यदि हम यह मान लें तो दाता दयाल की पवित्र पुनीति विभूति ने मनुष्य को आदि और अन्त माना है। आप मनुष्य और सोहं पुरुष जो इस मनुष्य का उत्पन्न कर्त्ता है उसको भी नाशवान मानते हैं। व्याख्या कीजिये।

उत्तर—जिस मनुष्य को प्रलय नहीं है वह सत्पुरुष है। सत्तालोक, प्रकाश और शब्द जिसका शरीर है, अलख लोक

जिसका मन (अनुभव) है और अगमलोक (विशेष चेतन्यता) है उसको वास्तव में प्रलय नहीं है। वह इसलिये कह रहा हूँ कि मैं जब शरीर, मन और आत्म अवस्था को छोड़ देता हूँ तो शेष फिर भी मेरी ज़ात रहती है। मैं हूँ आदि, अनादि, जुगादि अनाम यद्यपि उसके लिए मैं कहना ठीक नहीं है। वह अजर, अमर, अविनाशी और सर्व व्यापक है। जब उस अवस्था में मैं चला जाता हूँ तो मेरे लिए समस्त जगत लोप हो जाता है। जितनी रचना और सृष्टी है सब उसके सहारे हैं।

प्रश्न—इसमें क्या है ?

उत्तर—नेस्ती हस्ती है दोनों और इसमें कुछ नहीं।

एक अवस्था है सुन्दर और उसमें कुछ नहीं ॥
मस्ती है मगर मस्ती का खुमार उसमें है नहीं।
ज़िन्दगी है मगर ज़िन्दगी का इज़हार उसमें है नहीं ॥
मरहवाया है ऐ मुरशिदे कामिल तूने दिया था उसका इशारा।
इशारा लेकर उसको पाया जहाँ मैं व तू है नहीं ॥

इसलिए वास्तविक मनुष्य केवल वह है जो वहाँ तक चला गया हो उसको प्रलय नहीं है।

फ़ना और बक़ा दोनों हैं निसबती अलफ़ाज़ सब।
वहां पै जाके फ़ना और बक़ा दोनों नहीं ॥

प्रश्न—मनुष्य का कर्तव्य क्या होना चाहिए।

उत्तर—मुझे नहीं पता कि क्या कर्तव्य होना चाहिए किन्तु चूँकि मैंने जीवन में सदैव प्रसन्नता, आनन्द और सौख्य शाँती की खोज की है इसलिए यही समझ में आया है कि:—

इन्सान खुश रहे, बेग़म रहे और बे फ़िक्र।
इसी के लिए इन्सान भटकता फिरता है दरबदर ॥
खुशी नहीं मिलती है किसी काम में इन्सान को।
तो दिल उसका हो जाता है फ़ौरन मुकद्दर ॥

अज्ञान वश नर इस खुशी को ढूँढ़ता है बाहर।
दर असल यह है खुशी इन्सान के अपने ही अन्दर॥
मुरशिद मिले दे गए पता कि खुशी दर अस्ल है कहाँ।
अब इस खुशी का सुख भोगूँ और रहूँ अन्तर॥

प्रश्न—इसका रूप क्या है?

उत्तर—सुनो मित्रो?

बचपन से मुझको उस खुशी की तलाश हुई।
ज़िन्दगी सारी मेरी इसी धुन में गुज़ार गई॥
किसी ने कहा वह राम है और किसीने कहा वह कृष्ण है।
किसी ने कहा वह प्रकाश है और किसी ने कहा धुन नई॥
चलता रहा मैं सफ़र में देखे मंज़ार कई।
आनन्द लीने मस्तियाँ भी खुशियाँ भी नई नई॥
मगर वह खुशी क्या है क्या कहूँ मैं दोस्तो।
वह जब मिलती है मित्रो क्या ज़िन्दगी रहती नहीं॥
अब लामकानी होगया रहता हूँ इसमें मुदाम।
जिस लामकानियत में खुशी के सिवा कुछ भी नहीं॥
न शब्द है न प्रकाश है न रूप न रंग।
क्या हुआ मुझको ज़िन्दगी मेरी कुछ कह सकती नहीं॥

इस अवस्था से उत्थान होने पर चेतन्य होता हूँ तो संसार सम्मुख आता है और बुद्धि मन आदि का खेल आरम्भ होजाता है। फिर क्या कहूँ? यही कि:—

बेहरकती से हरकत हुई और ज़िन्दगी यह बन गई।
बन के यह खेल खेली फिर यह बेहरकत हुई॥
बेहरकती ही आधार है सब का वही है सर चश्मा।
हरकत की आवाज़ का नाम है सतनाम रक्खा॥
हरकत अगर इस बेहरकती के क़ाबू में है।
ज़िन्दगी पुरलुत्फ़ है और हर तरह से अमन में है॥

तुम्हारा मन चंचल है या एकाग्रह है। न हम इसके जानना चाहते हैं। न इसके जताने की हम को आवश्यकता है। जब तुम साधन या अभ्यास में बैठो। उस समय इसकी निरख परख करो। यदि तुम अभ्यास में लगन से बैठते हो तो मन को ठहरा हुआ समझो वरन वह जोश में आया हुआ समुद्र है जिसकी लहरें आकाश तक पहुँचा करती हैं। और शान्ति का कोसों पता नहीं है।

मान का अङ्ग (नन्दू भाई की साखी)

(यह पत्र ठा० हनूमानसिंह जी को लिखा गया था)

मान हना हनुमान सोई, राम का सांचा वीर।
बजरंगी बलवान होय, दुख सुख सहे शरीर॥
धन त्यागा तो क्या भया, मान तजा नहीं जाय।
मान ही जम का दूत है, मान ही सबको खाय॥
गुरु पद शीश झुकाय कर, त्याग दिया अभिमान।
सहज ही रज रावन मरा, बिना धनुष बिन बान॥
नहीं माँगूँ मैं मान मद, नहीं मांगू सम्मान।
सत्गुरु पद पर दंडवत, माँगूँ नाम का दान॥
मान को अपने मार ले, तू साँचा हनूमान।
पायेगा गुरु की दया, इक दिन पद निरवान॥
महावीर हनुमान है, गुरु का पूरा दास।
आसा सकल बिसार कर, धारे गुरु की आस॥
जो तूने ऐसा किया, मन में धर विश्वास।
यही भावना सत्य है, सदा सुखी रहे दास॥

बड़ों का विनोद और हास्य

लखनऊ में पं० जवाहरलाल नेहरू भाषण देने के लि मंच पर चढ़े तो उन्होंने देखा कि दर्शकों में हुल्लड़ सा मचा हु

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

है। पंडित जी इससे क्रोधित हुए। किन्तु जब उन्होंने हुल्लड़ बन्द होता हुआ न देखा तो वह स्वयं उसे शाँत करने के लिए मंच से कूद पड़े। किन्तु जैसे ही उन्होंने आगे बढ़ने का प्रयत्न किया उनके अङ्ग रक्षकों ने उन्हें पकड़ लिया। पंडित जी ने पूर्ण शक्ति से अपने को छुड़ाना चाहा किन्तु उन्होंने न छोड़ा। गुत्थमगुत्था होने लगी। नेहरू जी का चहरा लाल होगया, उन्होंने दो एक अँग रक्षकों के एक दो घूँसे भी मारे किन्तु उन्होंने पंडित जी को छोड़ा ही नहीं।

इसी बीच जनता शान्त होगई तो पंडित जी का क्रोध भी शान्त होगया। वह पुनः मंच पर चढ़ गए और पास बैठे हुए नेताओं से हँसते हुए बोले—'देखी आपने मेरी कुश्ती ?'

पं० मोतीलाल नेहरू एकबार अपने दमे की चिकित्सा कराने के लिए वियाना में एक प्रसिद्ध डाक्टर के यहाँ पहुंचे। वह अपने रोग के आरम्भ और उसकी वृद्धि का विवरण बिस्तार के साथ डाक्टर को बताने लगे।

डाक्टर कुछ जल्दबाज़ था। बोला—'आप इस समय किस रोग से पीड़ित हैं बस इतना ही बतलाइए।'

'इस समय ?' नेहरू जी ने उत्तर दिया—'इस समय तो मैं डाक्टर की जल्दबाज़ी के रोग से ही पीड़ित हूँ श्रीमान् जी।'

गाँधी जी पानी में नीबू मिलाकर पिया करते थे। एकबार नीबू मँहगे हो गए तो गांधी जी ने आदेश दिया कि नीबू के स्थान पर अब इमली का प्रयोग किया जाये।'

'इमली तो हानि करती है बापू !' सरदार पटेल ने कहा। क्या हानि करती है ?' गाँधी जी ने पूछा !

उससे हड्डियाँ गल जाती हैं' सरदार पटेल ने उत्तर दिया।

'और जमनालाल ब ज तो उसे बराबर प्रयोग करते हैं' ाँधी जी ने कहा, 'ि का डील डौल भी देखा है आपने'

सरदार हँसते हुए बोले—'इमलियां उनकी हड्डियों तक पहुँच ही कहां पाती हैं, जो उन्हें हानि पहुंचाए ।'

प्राक्कथन

(प्रेषक—पं० यादराम शर्मा टप्पल)

अथ—ईश्वर को जो मानता है वह आस्तिक है। ईश्वर को जो नहीं मानता वह नास्तिक है। स्वामी राम कहते हैं कि जो ईश्वर को नहीं मानता वह ही नास्तिक नहीं है वरन् जो अपने आपको नहीं जानता वह नास्तिक है।

ज्ञानी ईश्वर को कल्पित समझते हैं, वेद ईश्वर कृति होते हुए भी ईश्वर की ही भांति वेदों को भी मानते हैं, विज्ञानी परम-हंस की दृष्टि में वेद, शास्त्र, सृष्टि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ईश्वर सब मिथ्या हैं। उनकी धारणा "एको ब्रह्म द्वितोयो नास्ति।" "नेह नानास्ति किंचनः।" की रहती है। अपने के अतिरिक्त सर्व स्वप्नवत् है, अध्यस्त है, आरोपित है।

अज्ञानी न ईश्वर को मानते हैं न वेद शास्त्र को ही समझते हैं, और न उनकी दृष्टि में सृष्टि ही है। यदि है भी तो अपना आपा, अन्य का प्रश्न ही नहीं।

"सबसे भले गँवार जिन्हें न व्यापी जगति गति।" जैसे ज्ञानी, वैसे अज्ञानी। एक नाक को अपने आप काटता है, दूसरा बलात् शत्रु के चंगुल में फँस कटवाता है। नक कटा दोनों एक हैं। दोनों में अकर्मण्यता है। जैसा जड़त्व वैसा मिथ्यात्व। न देश का कल्याण, न राष्ट्र का हित और न समाज का लाभ।

प्रथम ज्ञान मार्ग है। दूसरा अज्ञान मार्ग है। दोनों ही ईश्वर को नहीं मानते। ज्ञानी व अज्ञानियों के बीच का मार्ग मध्यवर्ती मार्ग है। वेद, शास्त्र, सृष्टि उन्हीं के लिए है। विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण, धर्म और कर्म उन्हीं के लिए हैं। तत् अनुकरणी मध्यवर्ती मार्गीय हैं। वह ही मनुष्य हैं। यदि मनुष्य

मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण नहीं करते तो वह मनुष्य नहीं न ज्ञानियों के सींघ निकल आते हैं और न अज्ञानी गधा हो जाते हैं, परन्तु मनुष्य नहीं। तुम चाहे उन्हें देव मानो, चाहे पशु। तुम्हारी इच्छा।

मनुष्य ईश्वर को मानता है, विद्या से, बुद्धि से, विचार से, समझ से, अनसमझी से, मानता अवश्य है। मानने वाले में और मानी हुई वस्तु में जन्य जनक भाव सम्बन्ध होता है भक्त और भगवान का भी कुछ ऐसा ही सम्बन्ध है।

ईश्वर को मानो, प्रभु को मानो, अपने किसी भी इष्ट को मानो कैसा मानो? दातादयालु, सर्वाधार और सर्वव्यापक। न्याय-कारी मानोगे कर्मानुसार अपराधी को अवश्य दण्ड देगा। दाता-दयालु अपराधी पर दया कर हित देगा, मति देगा, आशा और मुक्ति देगा। सत् मानो, चित् मानो, आनन्द मानो, "सच्चिदा-नन्द स्वरूप" मानो, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, मानो, "आत्मवत् सर्व भूतेषु, मानो, तुम्हारा कल्याण होगा, राष्ट्र का, देश का, समाज का कल्याण होगा।

अकर्मण्यता स्वयं द्रोही है, लोकद्रोही है, राष्ट्र द्रोही है और समाज द्रोही है। कर्मण्यता में स्वयं हित है, लोक हित है राष्ट्र हित है और समाज हित है।

मानव, न देव है न दानव, मानव केवल मानव है। देश के लिए, राष्ट्र के लिए, समाज के लिए यदि कोई मरता है तो मानव और देश के लिए, राष्ट्र के लिए और समाज के लिए यदि कोई जीता है तो मानव।

अपना, समाज का, राष्ट्र का और देश का किस प्रकार मानव कल्याण करता है? इस पत्रिका में कथन होता रहता है।

(१) नोट—सन्तों के चित्रों के लिए श्री श्यामराव ८३४ नन्दू कुटिया लाल टीकरी नाम पल्ली हैदराबाद दकन को न भूलिए।

(२) दातादयाल की समाधि के लिए जो सज्जन अपनी भेंट भेजना चाहें वह ला० पतराम डा० खा० राधास्वामी धाम जि० बनारस के पते पर भेजने की कृपा करें।

ग़ज़ल

बहम था सब मेरा तेरा, बहम अब जाता रहा।
बहम ही दिन रात दिल को, मुफ्त भरमाता रहा॥
मैं ही सब कुछ हूँ, नहीं मेरे सिवा हरगिज़ कोई।
गैरियत का गीत फिर क्यों, यों ही मैं गाता रहा॥
ग़म किसी का था, नहीं कोई न दरदो रंजो आह।
सोचता हूँ किसके आखिर, ग़म को दिल खाता रहा॥
अब क़रार आया, मिली सौहबत मुझे जो पीर की।
ज्ञान अपना होगया, जब भ्रम सब जाता रहा॥
मारफ़त की राह जिसने, की न दिल से अख्त्यार।
वह अज़ाबे जिस्मो जाँ, नाफ़हमी से पाता रहा॥

जागृति-जीवन

असदो मा सद्गमय। तमसो मां ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।
"मनोमय जगत।"

"यस्मिन्नृचः सामय जूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभा विवाराः।
यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवः संकल्पमस्तु॥

अर्थ—जिस प्रकार रथ के पहियों में आरा सन्निविष्ट रहते हैं, इसी प्रकार ऋक्, यजु, साम के शब्द समूह मन में सन्निविष्ट हैं। पट में तन्तु समूह जिस प्रकार अनुस्यूत एवं ओत प्रोत होते हैं, वैसे ही सर्व पदार्थों का ज्ञान मन में ओत प्रोत रहता

है। अर्थात् अकलुषित, स्वच्छ और स्वस्थ मन जब होता है तब ही उसमें विविध ज्ञान उत्पन्न होते हैं, और जब मन व्यग्र, चंचल और विक्षिप्त होता है तब नहीं होते।

"सुसारथिरश्वानि व यन्मनुष्यान्ने नीयतेऽभीषुभिर्वाजिन।
इवहृत्प्रतिष्टां यदजिरं त्रविष्ठं तन्मे मन शिव संकल्पमस्तु ॥,,

जिस प्रकार चतुर सारथी लगाम के द्वारा घोड़े को अपने आधीन रखता है और शुद्ध सुगम और सरल मार्ग पर ले जाता है, इसी प्रकार देहस्थ मन रूपी सारथी इन्द्रियरूपी घोड़े को निकृष्ट, दुर्गम और निषेध विषयरूपी कुपंथ से हटा कर सत्य, सुख, शांति और प्रकाशित मार्ग की ओर ले जाता है। हे प्रभो अन्तः करण स्थिति मेरा मन जो कि बड़ा ही चंचल है, नित्य तरुण रहता है और प्रत्यक्ष वेग गामी है, यह शान्ति व्याप वाला हो तथा सर्वदा कल्याणकारी शुभ संकल्प वाला हो।

"यज्जाग्रतो दूर मुदैत दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मन शिव संकल्पमस्तु ॥,,

प्रगाढ़ निद्राया सुषुप्ति अवस्था में जो मन सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाता है, वह जागते ही तत्क्षण फिर जी उठता है। चक्षु आदि इन्द्रियां जागृति अवस्था में इतनी दूर नहीं जाती जितना कि मन दूर से दूर चला जाता है और फिर लौट भी आता है। जो बड़ा ही दैव अर्थात् दिव्य ज्ञान वाला है। प्राकृतिक व्याकृतिक और अध्यात्मिक सम्बन्धी सूक्ष्म विचार जिस मन में सरलता से आ सकते हैं। वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो, अर्थात् सदा उसमें धर्म हो स्थान पावे। सहानुभूति, करुणा तथा मयत्री के भाव विद्यमान रहें और सदा मन पाप ईर्षा द्वेष घृणादि से दूर रहे। इति।

"न द्यस्तविद्या मनसोऽतिरिक्ता मनोह्यविद्या भववन्धहेतुः।
तस्मिन्विनष्ठे सकलं विनष्टं विजृम्भितेऽस्मिन्सकलं विजृम्भते

अर्थ—मन से अतिरिक्त कोई और अविद्या (माया) है ही नहीं, संसार में बन्धन का हेतु यदि कोई माया (अविद्या) है तो वह केवल मन ही है। मन के ही नाश होने से संसार का नाश हो जाता है और मन के उत्पन्न होने से संसार उत्पन्न हो जाता है।

स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या भक्त्रादि विश्वं मन एव सर्वम्।
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणाम् ॥

अर्थ—जिस स्वप्न में कोई भी पदार्थ नहीं होता, उस स्वप्न में केवल मन ही अपनी शक्ति से सम्पूर्ण भोक्ता भोग्यादि प्रपंच को स्वयं रचता है। इसी प्रकार जागृति में भी यही मन केवल अपनी ही शक्तिसे सम्पूर्ण विश्वको रचता है। यह रचनाका कार्य मनके लिए साधारण सी बात है कोई विशेषता नहीं है। यह मन अपनी शक्तिके विलास मात्र से कितने ही ब्रह्माण्डोंको रच देता है और किसी भी दूसरी शक्ति का आश्रय नहीं लेता। ऐसा जगत् गुरु श्री शंकराचार्य जी अपनी विवेक चूणामणि में कहते हैं।

चतुर्वेद, षट्शास्त्र, अष्टादशपुराण मन से ही उत्पन्न हुए हैं और मन में ही समा जावेंगे। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी मन से ही उत्पन्न हुए हैं। मन के अतिरिक्त इनका बनाने वाला अन्य कोई नहीं है। यक्ष, राक्षस, गंधर्व, स्वर्ग, नर्क सब मन का ही विलास मात्र है। हम तुम सब मन के ही आधीन हैं। कहाँ तक कहा जाय, यह सम्पूर्ण सृष्टि मन से ही उत्पन्न होती है और मन में ही समा जाती है। मन के उत्पन्न होने से जगत का भान होता है और मनके नाश होने से विश्व का नाश हो जाता है। मन के अतिरिक्त विश्व है न होगा और न हुआ। मन ही माया है। अथवा माया ही मन है। मन से अलग कहीं भी कोई माया नहीं।

मन माया के फेर में, भ्रम रहे दिन रात।
मन से जब ऊपर चलो, सार वस्तु आये हाथ ॥

सृष्टि मनो मय है, संकल्पमय है, विचार आधीन है।

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, जैसा ख्याल वैसा हाल, जैसी मती वैसी गती। सोचो, समझो, विचारो। तुम! अपने संसार के आप बनाने वाले हो और अपने आप बिगाड़ने वाले हो। अपने संसार के आप अधिपति हो चाहे अच्छा बनाओ चाहे बुरा। सोचो, समझो, विचारो। देखो! तुम जैसा चाहोगे, वैसा होगा। जैसा करोगे वैसा मिलेगा। जैसा बोओगे वैसा काटोगे। क्यों! अपने संसार के तुम स्वयं ईश्वर हो। अपनी सृष्टि के स्वयं पालक हो, पोषण कर्ता हो, रक्षक हो और स्वयं ही संहार कर्ता हो। क्यों दूसरों को दोष देते हो? क्यों ईश्वर को भला बुरा कहते हो? तुम अपना दोष अपने ही ऊपर मढ़ते हो। अपना बुरा अपने आप करते हो। अपने पैरों में अपने आप कुल्हाड़ी मारते हो। आंखें खोलो! चोंको मत ध्यान दो, विचार करो, भ्रम को दूर करो।

खंजर की क्या मजाल कि, कोई जख्म कर सके।
तेरा ही है ख्याल कि, घायल हुआ है तू॥

तुम स्वयं सिंह हो। अपने ही भ्रम से, भूल से, अन-समझी से, अज्ञान से, मन के चक्कर में पड़कर भेड़ बन गये हो। तुम भेड़ नहीं हो। क्यों भेड़ चाल चलते हो? क्यों गड़रियों की छड़ी के भय से छिपते हो? क्यों मैं मैं करते फिरते हो? और कब तक इसी प्रकार अपना जीवन खिपाओगे? आओ मैं तुम को वास्तविक स्वरूप सिंह का प्रत्यक्ष दर्शन कराता हूँ।

देखो! देखो!! आँख खोल करके देखो!!! किसी का भेड़ चाल सदृश्य विश्वास मत करो। अपने आप बढ़ो, अपनी आँखों देखो। कब तक किसका भरोसा करोगे? जिसे देखो सब मैं मैं करने वाले हैं। अपना मरना जीना अपने ही हाथों है। कहते हैं अपने मरे बिना तो स्वर्ग भी नहीं दीखता। अच्छा दूर नहीं तो आओ! दर्पण हाथ लो और अपने अन्तर मुख हो स्वरूप पर दृष्टि डालो! देखो क्या तुम भेड़ ही हो? और

तो पानी में ही अपनी परछाई देखो, सिंह की भाँति एक दहाड़ तो लगाओ, फिर देखो, क्या तुम्हारे सामने कोई भी भेड़ ठहरती है। यह केवल कहने सुनने की बात नहीं है। तुम वास्तव में सिंह हो। कोई तुम को सिंह क्या बनावेगा? तुम बने बनाए हो। बस परदा हटवा है, फिर क्या है? क्या देखते हो? सिंह की भाँति एक दहाड़ लगाई नहीं कि सब भेड़ नौ दो ग्यारह हुई नहीं!

ग़ज़ल नन्दू भाईजी महाराज।

मैं हूँ सब का सब हैं मेरे, सबका मुझको ध्यान है।
सब की मैं ख़िदमत करूँ, दिल में यही अरमान है॥
नौये इन्सान एक जौहर से हैं, शक इस में नहीं।
क्यों न उलफ़त का भरे दम, सच्चा जो इन्सान है॥
आदमी पर हिस्र क्या, अर्ज़ो फ़लक सब हैं मेरे।
यह नहीं मेरे जिस्म, मेरी जान इनकी जान है॥
ख़िदमते मख़लूक़ इताअत, और इबादत की है रूह।
सबसे हो प्रेम और उलफ़त, दिल में सच्चा ज्ञान है॥
मैं ख़ुदा से जाहो दौलत की हविस, रखता नहीं।
सब हों मेरे मैं हूँ सब का, सिर्फ़ इसी का ध्यान है॥
राधास्वामी नाम में रहती, सुरत है रात दिन।
ग़ैर मुमकिन का भी, राधास्वामी नाम में इम्कान है॥
कर इबादत संत की, सौहबत में फ़ुक़ुरा के तू बैठ।
ज़िन्दगी गढ़ने का मुन्शी, यह रास्ता आसान है॥

कबीर अष्टक

[प्रे० ठा० श्रीरामसिंह अलीगढ़]

नमो शब्द रूपी सोहै जक्त कर्त्ता, दया पाल स्वामी सबे कष्ट हर्ता,
विशालं कृपालं धनी अन्तरयामी। बिदेहं स्वरूपं कबीरं नमामी।१।

अखंडं, अकर्म, अनिक्षा, अदेहीं, जपे शेष जाको लहें नाहि तेहीं,
लगी शम्भु तारी गहो अर्ध नामी ।। विदेहं .... ।।२।।
तके जीव सर्ना सो भौ सिन्धु तर्ना, अघे खान टर्ना गहो बेगि चर्ना,
अभे रूप जाको महा प्रेम धामी ।। विदेहं .... ।।३।।
जहां जिव पुकारे तहाँ को सिधारे, भए दीन जेते स्वतेते उबारे,
लखे कोई न जाको अनामी सनामी ।। विदेहं .... ।।४।।
परे सिन्धु मारे स्व साहिब पुकारी,करी आप रक्षा सुता को उबारी
अभे मुक्त दाता मिले आप स्वामी ।। विदेहं .... ।।५।।
तुहीं सृष्टि कर्ता तुहीं आप हर्ता, तुही सेत सिन्धु तुहीं फेर भर्ता,
तुहीं सर्व कामी तुहीं हो कामी ।। विदेहं .... ।।६।।
तुही बेन वींणां नवीना बजावे, तुहीं आप रीझें तुहीं आप गावे,
वएं दीन डोले योंही ऐसा कामी ।। विदेहं .... ।।७।।
तुहीं राम रवना तुहीं कंश कृष्णा, तुहीं ब्रह्म रुद्र तुहीं देव विष्णा,
तुहीं सेस सिन्धु तुहीं भूमि थामी ।। विदेहं .... ।।८।।
तुहीं सर्व जीवन के हो रक्ष कारी, तुहीं चारखानी सो वानी सुधारी
तुहीं आप जीवन दई सत्य नामी ।। विदेहं .... ।।९।।
तुहीं खेल खेले खिलावे, अकेला, तुहीं आप स्वामी तुहीं आप चेला,
तुम्हीं खेत भागे लड़े धार स्वामी ।। विदेहं .... ।।१०।।
उभे भेष धारी धरे भेष भारी, तुहीं भोग भोगी तुहीं ब्रह्मचारी,
कहाँ को कहीं ले अपारे अनामी ।। विदेहं .... ।।११।।
हुई काल पीरा जवे जीव सताए, लिए नाम लाहा जो लाहा हो आए,
लखोरे लखोरे कृपा सिन्धु स्वामी ।। विदेहं .... ।।१२।।
अघेखान जेते किए हान तेते, गहो सप्त पंथा उहाँ संत हेते,
बसें देस जाको जहाँ है अनामी ।। विदेहं .... ।।१३।।
जपे नाम नीको सदा है कबीरा, मिले लोक बासें हरें काल पीरा,
अमीरा अपीरा सोहै तासु नामी । विदेहं .... ।।१४।।
हरे मत मंदा [illegible] फंदा, उबारो उबारो महाकाल फंदा,

अभैवास जाको सो है अन्तरयामी। विदेह .... ॥१५॥
कबीर अष्टक पढ़े, महा प्रेम बानी सुनै औ सुनावे,
कहैं दीन बंदा सो फंदा न आनी। विदेह .... ॥१६॥

प्रसन्नता का रहस्य

(ले० महऋषिजी महाराज)

अनेक व्यक्ति स्वभावतः चिन्ताग्रस्थ और दुखित रहते हैं। यह अपना कर्म, धर्म, पंथ, संप्रदाय सबको दुखित बना लेते हैं। प्रति दिन उनके जीवन का कर्तव्य रोना, धोना, झींकना ही हो जाता है। और बिना अश्रुपात के रह नहीं सक्ते। यदि इनको रोने, धोने और झींकने तथा अश्रुपात से चैन मिलता तब भी कोई बात थी किन्तु चैन तो पाते नहीं दुख का बीजारोपण करते, दुख की फसल काटते और दुख का भोजन करते रहते हैं। जो इनकी संगत में उठता बैठता है उसको भी दुखी होना पड़ता है। जो इनकी सहायता करने को प्रस्तुत होता है उसको भी दुख रूपी नदी में डूबना पड़ता है। ऐसों को कौन चाहेगा? कोई भी नहीं।

रोना धोना झींकना सब अपनी नादानी में है।
वर्ना इन सबका पता कब लहने मस्तानी में है॥

हममें कुछ ही व्यक्ति ऐसे प्राणियों की संगत करने के इच्छुक होंगे। जीवन अनेक प्रकार से साधन सम्पन्न क्रियात्मिक, सिद्धांतमय होना चाहिये। उदाहरणतः बच्चे क्रीड़ा करते हैं, पक्षी चहचहाते हैं, पुष्प खिले हुये हैं, इनको देखकर सबको प्रसन्नता मिलती है। खाओ, पीओ, बोलो चालो, मिलो जुलो, खेलो कूदो, इन सब कर्मों का अभिप्राय यह है कि स्वभाव सदैव बदलता रहे और परिवर्तन प्रसन्नता मय हो। जीवन अनेक सिद्धाँत मय है पढ़ना, लिखना सोचना विचारना गाना बजाना,

यह सब सिद्धांत हैं जिनसे हमारे जीवन की गढ़त होती है । यह सब प्रसन्नता के पदार्थ हैं यद्यपि कोई इनकी वास्तविकता को समझे।

यदि ईश्वर इस जगत का उत्पन्न करने वाला है तो हमको उसका कृतज्ञ होना चाहिये कि उसने एक दशा पर ही जीवन की नींव नहीं स्थापित की। जागो, स्वप्न देखो, सो रहो। यदि प्राणी प्रकृति के मन्तव्य तथा अभिप्राय को समझे तो उसको दुखी होने की आवश्यकता नहीं यदि निर्धन से निर्धन प्राणी प्रसन्नता की आवश्यकता प्रतीत करे तो वह सम्राट से भी अधिक प्रसन्न रह सक्ता है। क्योंकि सम्राट की अपेक्षा उसके कर्तव्य का भार हलका है। उस व्यक्ती का जीवन जिसको कहीं भी प्रसन्नता नहीं मिलती किस प्रकार का दया जनक है। यह क्यों संसार में आया है? जीवन तो प्रसन्नता है यदि प्रसन्नता नहीं तो फिर जीवन कैसा।

दिल शाद नहीं तो ज़िन्दगानी कैसी।
जब ऐश नहीं तो नौ जवानी कैसी॥
नयेरे मौहताजगी खुदा ने बख्शी।
यह फ़ज़लो करम यह महरबानी कैसी॥

सबको अपनी योग्यताओं को उन्नति देने का अवसर प्रत्येक समय प्राप्त है। तनिक स्वभाव के गढ़ लेने की आवश्यकता है। स्वभाव बना और प्रसन्नता मिलेगी। दुखित स्वभाव व्यक्ति स्वभाव के प्रतिकूल दुख के अभ्यास में लगे रहते हैं जो सदैवत् अति भूल और त्रुटि है।

कौन व्यक्ति है जो हंसना और मुस्कराना नहीं चाहता। यह प्रत्येक प्राणी का प्राकृतिक देन है। हंसने की टेव डालो और दुख का भार उसी समय आधा रह जायगा। यदि कष्ट आधा रह गया तो उसको प्रसन्नता पूर्वक सहन करने लगो और

वह शीघ्र ही दूर हो जावेगा। प्रकृति कभी नहीं चाहती कि कोई कष्ट के बोझ से लदा रहे। यदि ऐसा सम्भव होता तो इस रचना में जीवन का प्रकाटय ही न होता।

विचार कीजिये कि तुम किस प्रकार प्रसन्न रह सक्ते हो। और उसी प्रकार के पदार्थ तथा सामिग्री से सम्बन्ध उत्पन्न करो। प्रकृति तुम्हारी सहायक होगी और निज अनुभव और निरीक्षणों के क्रम में प्रत्येक प्रकार के लाभदायक और प्रसन्न चित्त पाठ देती चलेगी और तुम प्रसन्न रहोगे तो अन्य प्राणियों को भी प्रसन्न कर सकोगे। यदि अन्य प्राणियों को प्रसन्नता देते हो तो प्रकृति तुम्हारी प्रसन्नता में दसगुना तथा सौगुनी वृद्धि करती रहेगी।

धन दिये धन ना घटे, नदी न घट्टे नीर।
अपनी आंखों देखलो, यों कथ कहैं कबीर॥
जल दिये जल ना घटे, देख कूप का रूप।
मनमें सोच विचार लें, दोनों परजा भूप॥
ज्ञान दिये क्यों वह घटे, बढ़े सवाया नित्त।
कहैं कबीर विचार के, ज्ञान दे परके दित्त॥
सुख दिये सुख ना घटे, सुख दीजे दिन रात।
सुख का दानी सुखी नित; नहीं कलेश उत्पात॥
देह धरे का गुन यही, देय देय कुछ देय।
कहैं कबीरा देय तू, जब लग तेरी देह॥

प्रकृति माता में दुख नहीं है। शास्त्र वाले इस प्रकृति माता को आठ वर्ष की गौरी या (पार्वती) कहते हैं। वह क्यों ऐसा कहते हैं? प्रत्येक प्राणी उसको अपने लिये विचार कर सक्ता है। सृष्टी की रचना में दुख का कहीं नाम भी नहीं है। प्राणी, व्यर्थ दुख के भ्रम में पड़े हैं। दुख केवल अज्ञान है।

जिस प्रकार हो सके प्रत्येक अङ्ग से प्रसन्न रहने की टेव

डालनी चाहिये। तनिक ध्यान देने की देर है फिर स्वयं मार्ग निकल आवेगा। किन्तु तनिक सावधानी की भी आवश्यकता है। किसी के दुख देने में सुखकी खोज न हो। यह आवश्यक प्रयत्न है। हंसी ठट्ठा अच्छे किन्तु इनसे यदि किसी के हृदय को वेदना होती है तो विचार रहे।

झगड़े की जड़ हाँसी। और रोग की जड़ खाँसी॥

द्वितीय प्रयत्न यह है कि प्रसन्नता जीवन का एक अंश है। प्रसन्ता क्या है? इसको समझ लेना चाहिये। कोई धन में प्रसन्नता ढूंढ़ता है, कोई आदर मान में, कोई भोग विलास में, कोई मनोरंजन में। यदि इनसे वास्तविक में यथार्थ प्रसन्नता मिलती है तो कहना सुनना व्यर्थ है किन्तु सत्य बात यह है कि यह प्रसन्नता के अङ्ग हैं। यदि हम इनमें लिप्त रहें तो फिर यह दुखदाई प्रतीत होने लगते हैं। भोजन में परयाप्त मात्रा में लवण डालो तो वह भोजन को स्वादिष्ट बना देगा। यदि अधिक डाल दोगे तो वह अस्वादिष्ट बना देगा।

खाओ पीओ प्रसन्न रहो किन्तु यदि भोजन जीवन का लक्ष्य समझा गया तो फिर प्रसन्नता गई। शरीर मोटा होगया, आत्मा की मृत्यु होगई। आत्मा का काम शरीर से होता है। शरीर आत्मा के अधिकार में हो तब प्रसन्नता प्राप्त होगी। शरीर को प्रत्येक रूप से दृढ़ शक्तिशाली और स्वस्थ रक्खो। स्वस्थता एक अमूल्य पदार्थ है किन्तु आत्मा को सर्व श्रेष्ठ विचार करो।

तृतीय प्रयत्न यह है कि प्रसन्नता के लिये किसी व्यक्ति की आधीनता न हो और न किसी को अपनी प्रसन्नता का शस्त्र बनाकर उसको आधीन न रक्खो वरन् प्रसन्नता से हाथ धोना पड़ेगा। संसार में स्वार्थ निकृष्ट पदार्थ है। यह प्रसन्नता को उसी प्रकार नष्ट भ्रष्ट कर देता है जिस प्रकार खेती को वर्षा और पाला।

चतुर्थ प्रयत्न यह है और यह बुद्ध भगवान की वाणी है। प्रसन्न हो तो औरों को भी प्रसन्न होने दो। दूसरों की भावनाओं का भी प्रति समय विचार रहे। दूसरों की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता यथार्थ प्रसन्नता है। तुम हंसो औरों को हंसाओ और हंसने दो तब प्रसन्नता प्राप्त होगी। सन्त वाणी है "जीओ और जीने दो, रहो और रहने दो, मनुष्य बनो और औरों को बनने दो, औरों के काम आओ"।

दातादयाल और परमदयाल

जैसा गुरू वैसा ही चेला। दोनों का रूप सुहेला॥
साँच का साँच से होगया मेला। यह खेला वह भी खुल खेला॥
बात बात में समझ जो आई। दिल से गई दिल की दुचिताई॥
जब अज्ञान की मिटी बुराई। आप ही प्रकटी आप भलाई॥
अब नहीं भ्रम का नाम निशान। साँच को पकड़ा साँचा जान॥
एक शक्ल के दो इन्सान। दोनों ही हैं चतुर सुजान॥
भेद भाव जब मन से गया। चेला गुरु जैसा तब भया॥
ऐसा गुरू तुम्हें मिल जाय। पल में मन का भरम नसाय॥
झूँठे हैं जग के मतवाले। वह माया के पड़े हैं पाले॥
माया उन्हें नित्त भरमाय। कोई न ठौर ठिकाना पाय॥
झूँठे गुरू का झूँठा चेला। झूँठी संगत झूँठ झमेला॥
झूँठ के होते नहीं हैं पाँव। झूँठ का कोई शहर न गाँव॥
जो कोई झूँठ की संगत करे। कभी न सुधरे जीता मरे॥
झूँठे गुरु की ओट न गहो। इससे अलग थलग तुम रहो॥
नहीं वह लेगा एक दिन जान। ज्ञान बताये क्या अज्ञान॥
अन्धे का अन्धा गुरू हुआ। दोनों के आगे है कुआ॥
मुँह के बल धम से जब गिरे। फिर पछताये काज न सरे॥
समझ समझ नर चतुर सयाना। झूँठे गुरु के पास न जाना॥
झूँठे गुरू को दुशमन जान। उसको तज दे हो कल्यान॥

सांचे गुरू की यह पहिचान। चेला करें वह आप समान॥
पारस से गुरु बढ़कर जानो। बात मेरी यह सच्ची मानो॥
पारस से लोहा छू जाय। वह सोने के मोल बिकाय।
सन्तों की जो शरण में आया। सन्त बना जग फंद कटाया॥
ऐसे गुरु पर तन मन वारो। जीते ही जी काज संवारो॥
यह शिक्षा है यह उपदेश। यही सुनाया तुम्हें संदेश॥
दातादयाल और परम दयाल। दोनों का है इसमें हाल॥
और तीसरे नन्दू भाई। दयाल स्वरूप की है प्रभुताई॥
चौथे हैं फिर संत कृपाल। क्या कहूँ उनको बड़े दयाल॥
सब सन्तों की महिमा गाऊँ। मैं भी उनसा ही हो जाऊँ॥
हे संत गुरु अब तुमको लाज। पूरन करना मेरा काज॥
सबके बिगड़े काम बनाओ। मनुष्य बनें हम मनुष्य बनाओ॥

ग़ज़ल दाता दयाल

(प्रे०— नन्दू भाई जी महाराज)

बेज़ुबानी में है वही, मेरी ज़ुबाँ में है वही।
जिस्म में ज़ाहिर है वह, रूहेरवाँ में है वही॥
ढूँढने किसको चले, नादानो! नादानी से तुम।
है वही नादाँ में ज़ाहिर, राज़दां में है वही॥
आँख में है, कान में है, हाथ में और पाँव में।
रेशे रेशे में रवाँ, रग रग की जाँ में है वही॥
कैसे कहता है कोई, ख़मोश है उसकी ज़ुबाँ।
वह नहीं में भी है ज़ाहिर, और सबकी हाँ में है वही॥
चुप रहो वह बोलता है, मेरे मुँह में बैठकर।
मुझमें है तुम में है उसमें, सब में पिन्हाँ है वही॥

ग़ज़ल पीरेमुग़ाँ साहब

कितने परदों में छुपा बैठा है तू ऐ नाज़नीं।
क्या कहूं ख़िलवत नशीं है या तू है परदा नशीं॥

आबो गिल बाद और आतिश से बनाया कालबुद।
उसके अन्दर आके बैठा होगया परदा गुज़ीं ।।
परदों के अन्दर छुपे परदे हैं परदे बेशुमार।
कोई देखे भी तो देखे कैसे यह मुमकिन नहीं ।।
हैं कहीं बारीक परदे और कहीं हैं वह कसीफ़।
परदों पर परदे पड़े हैं परदों की हद है कहीं ।।
एक नासूती तो मल्कूती है परदा दूसरा।
तीसरा जबरूती है चौथा है लाहूती वहीं ।।
पाँचवाँ हूती है तो हाहूती छटा का नाम है।
हूतहूती सातवाँ आंखें मेरी पथरा गईं ।।
परदा दारी क्यों तुझे भाई नहीं आती समझ।
किस लिये छुप छुप के बैठा कोई बतलाता नहीं ।।
नूर परदा, साया परदा, बरज़ाखी परदा कई।
अर्श परदा, फ़र्श परदा, आस्मां परदा ज़मीं ।।
नाम परदा, शक्ल परदा, परदा दोनों रूह जिस्म ।।
मोह परदा, और जबीं परदा है परदा महजबीं ।।
परदादारी है हुनर और ऐब परदा फाड़ना।
यह समझ भी परदा है, परदों में परदे हैं मकी ।।
इल्म खुद परदा बड़ा है और परदा है बुरा।
इल्म पर परदा पड़ा, परदा बीनी अक़्ले मतीं ।।
परदों के अन्दर छुपा बैठा है तू शक्ले प्याज़।
फाड़ कर परदा जो देखे तो नज़र आया कहीं ।।
क्या कहूँ अन्धेर है, कहना भी परदा, बन गया।
आह परदा आफ़रीं ! क्या खुद है तू परदा कहीं ।।
ला अगर परदा, तो इला परदा, परदा भी घना।
वस्ल परदा फ़स्ल परदा, परदा हैं दूरोक़रीं ।।
सख्त हैरत है, नहीं हैरत की कोई इन्तहा।
तू है जब परदा गुज़ीं कैसे बुतों में परदाबीं ।।

होगया मजबूर तब खिदमत में मुर्शिद के गया।
बोले कान और आँख लब को बन्द करले बिलयक़ीं ॥
परदा जब उन पर पड़ा तब कुछ हक़ीक़त खुल गई।
क्या है तू और क्या कहूँ मैं कहना मुझे आता नहीं ॥
अब हूँ मैं खामोश जा परदों में परदा बन के रह।
परदे की बेपरदगी करना मुझे ज़ेबा नहीं ॥
पागया हूँ राज़े बातिन हां नहीं के बीच में।
तू है सब कुछ, कुछ नहीं तू, हो गया खातिर नशीं ॥
सब्र आया शुक्र है, औरों को इत्मीनान है।
मेरी हस्ती है तेरी हस्ती यहाँ है तू वहीं ॥
एक में था वहम दो का था और दुई में पेचोताब।
एक दो के है मकाँ में रूह बहदत की मकीं ॥
असरार मुल्क़ी का निशां तूने दिया पीरेमुग़ाँ।
हुस्न का आशिक़ बना और आप बन बैठा हसीं ॥

—०❀०—

सूचना—दाता दयाल महर्षि जी महाराज की समाधि की ओर जिन प्रेमियों ने अभी तक ध्यान नहीं दिया है वह अवश्य दें।

"मनुष्य बनो" का प्रचार नवीन ग्राहकों के बनाने से ही हो सकता है। हमारा, आपका और देश का कल्याण इसी में है।

भगवान के अनन्य भक्त रूप और सनातन

रूप और सनातन दो सगे भ्राता थे। बड़े प्रेमी और प्रभु के सच्चे भक्त थे। यद्यपि उनका अधिकतर समय संसार के कार्य व्यवसाय में व्यतीत होता था किन्तु मन सदैव भगवान के चरणों में लगा रहता था। उनको सांसारिक सम्बन्ध बन्धन प्रतीत नहीं होते थे। यह दोनों महात्मा बंगाल के गौड़ देश के रहने

वाले थे। उस समय बंगाल में यवनों का शासन था और समय के सम्राट की ओर से इन्हें राज्य पदवी प्रदान हुई थी। धन सम्पत्ति की घरमें कमी नहीं थी। पदवी और अधिकार भी प्राप्त थे।

यद्यपि ये बड़े सर्व प्रेमी पुरुष थे किन्तु इनके जीवन में कभी नहीं सुना गया कि उन्होंने कभी भी अपने पद अधिकार और सम्पत्ति का अनुचित लाभ उठाया हो अथवा किसी व्यक्ति को व्यर्थ में ही कष्ट दिया हो। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इनके व्यवहार से प्रसन्न थे और दोनों ही के मनमें इनके लिये स्थान था। यह जनता का कार्य बड़ी प्रसन्नता पूर्वक करते थे। प्रत्येक के दुख को दूर करना उनका लक्ष्य था। जनता को दुख देकर घूंस लेना वह महान अपराध समझते थे। वह यह समझते थे कि शासन जनता की सेवा के लिये निर्माण किया जाता है वरन् केवल कर लगाकर दीन जनों का खून चूसने के लिये नहीं। शासन अधिकारी वास्तव में जनता के सेवक होते है। उनका आदर्श जनता की सेवा करना होना चाहिए।

रूप और सनातन ने अधिक समय तक शासन पद के कर्तव्य पालन किए। जनता प्रार्थना करती थी कि वे इसी प्रकार गौड़ देश के अधिकारी बने रहें और जन साधारण उनके कारण सौख्य और शान्ति की अवस्था में रहें किन्तु रूप और सनातन संसार में किसी और विशेष व श्रेष्ठ कार्य के लिए नियुक्त हुए थे। वर्तमान दशा आगामी दशा की सूचना थी और उसकी परीक्षाओं और निरीक्षणों के क्रम में इनके आत्मिक भाव पल रहे थे। अन्त में एक ऐसा समय आगया कि इस कोटि को पार करके किसी और उच्च कोटि पर पदार्पण करने की अत्यन्त आवश्यकता हुई और प्रकृति ने उनके मन को उच्च सेवा के योग्य पाकर तुरन्त ही उन्नति की ओर आकर्षित किया।

एक दिन का वृतान्त है जब यह प्रातःकाल सन्ध्या बंदन

से निवृत होकर अपने दैनिक कार्य में संलग्न थे एक मस्त फ़क़ीर मकान की ओर से निकला और उसने उच्च स्वर से अमुक घोषणा की। रूप और सनातन ने उसको सुना। संस्कृत के अतिरिक्त वह फ़ारसी भी जानते थे। घोषणा को सुनकर हँसे और रूप ने सनातन से कहा सुनते हो! फ़क़ीर साहब क्या कह रहे हैं? सनातन ने कहा यह आकाश वाणी है। इसमें सत्य आदेश की सामिग्री अन्तरित है और कितने खेद की बात होगी यदि इस आदेश की ओर कान न किए जाँय। फ़क़ीर को दान दक्षिणा देकर शासन कार्य में संलग्न हुए और दिन भर ध्यान पूर्वक कार्य किया और संध्या को निवास स्थान की ओर चले तो मार्ग में फिर वही शब्द सुनाई दिये।

"रात गँवाई सोय कर दिवस गँवाया खाय।
हीरा जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय॥"
कै सोना कै खावनो और न कोई चित्त।
सतगुरु शब्द बिसारिया आदि अन्त का मीत॥
कबिरा यह तन जात है सकै तो राख बहोर।
खाली हाथों वह गये जिनके लाख करोर॥

मन को चोट लगी और विचार करने को विवश हुए। संसार में कितने व्यक्ति हैं जो प्रतिदिन साधू सन्तों की घोषणा सुनते हैं परन्तु ध्यान नहीं देते। ध्यान केवल वह प्राणी देते हैं जो अधिकारी और संस्कारी होते हैं। यह घोषणा सुनाने वाले कीओर आकर्षित होकर पूछने लगे "साधू जी! यह अमृत वाणी स्थाई जीवन के प्रदान करने वाली है, इसकी थरथराने वाली धारों में प्रेम और प्रतीत की आत्मा है। धन्य है वह प्राणी जो ऐसे शब्दों को आदर और मान के कानों से सुनते हैं। साधू दुतारा बजाता हुआ फिर बोला—

आज कहै मैं काल भजूंगा, काल कहै फिर काल।
आज काल के करत ही, अवसर जासी चाल॥
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज।
पाव पलक की सुधि नहीं करै काल का खाज॥

अधिक सुनने की आवश्यकता नहीं रही। आँखों से प्रेम की अश्रुधारा प्रचलित होगई। साधू का स्वागत किया और कुछ दान दक्षणा देकर बिदा किया और दोनों भ्राताओं ने प्रेम अश्रु पात करते हुए घर में प्रवेश किया।

सायंकाल सन्ध्या बन्दन किया, थोड़ा सा भोजन किया और फिर सांसारिक कार्य में संलग्न हुए। उस रात्रि को उनको अपने घर की धन सम्पत्ति और शासन कोष का हिसाब करना था। दीपक प्रज्वलित किया और आप व्यय के लेखा को लेकर हिसाब करने लगे और वह मन को एकाग्रता की तरंग में इस प्रकार संलग्न होगए कि अपने आपको भूल गए। समस्त रात्रि हिसाब में व्यतीत होगई, प्रातःकाल उदय हुआ और उनको किंचित् मात्र भी ध्यान न हुआ कि रात्रि किस प्रकार व्यतीत होगई। अन्त में हिसाब समाप्त हुआ और सम्भव था कि कुछ समय विश्राम लेते किन्तु फिर प्रातःकाल भैरवी राग में सुनाने वाले के शब्द कान में पड़े—

मानुष जन्म दुर्लभ है, मिलै न बारम्बार।
तरुवर से पत्ता झड़े, बहुरि न लागै डार॥
पानी कासा बुलबुला, इस मानुष की जात।
देखत ही छुप जाँयगे, ज्यों तारा प्रभात॥

सनातन बोले! रूप भाई! देखो समस्त रात्रि संसार के कार्य में ऐसी व्यतीत हुई कि सुध न रही। आज यह तीसरा अवसर है कि ऐसे चिताने वाले शब्द कानों में पड़े हैं। क्या अब

आवश्यक नहीं है कि हम जीवन की श्रेष्ठ कोटि में प्रवेश करके इसको सुफल करलें। यदि यही समय भगवत भक्ति और सतसंग में व्यय होता तो कितनी अच्छी बात थी।

रूप ने उत्तर दिया बात तो सत्य है आओ घर का प्रबन्ध करके सदैव के लिये इससे मुक्त हो जाँय।

तू मत जाने बाबरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्राणों से बँधा, यह ना अपना होय॥

शब्द बंद नहीं हुआ था। जाने वाला हाँक पर हाँक लगाये चला जारहा था।

जा घट प्रीति न प्रेम रस, पुन रसना नहिं नाम।
ते नर पशू संसार में, उपज मरे बे काम॥

रूप ने कहा महाराज! आप सुनते हैं वाणी क्या कह रही है? सनातन बोले मालिक की भक्ति करने की ओर संकेत है। रूप ने पूछा मालिक की भक्ति किस प्रकार कीजाय। फिर आकाशवाणी हुई।

जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहैं कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु सेवा॥

सनातन ने कहा भाई उठो। समय आगया अब असमंजस करना व्यर्थ है। प्रकृति सूचना दे रही है। उसके उपदेश के शब्द स्पष्ट हैं अब समय नष्ट न करना चाहिए।

यह कह कर दोनों भ्राता उठे। उस समय श्री चेतन्य महाप्रभू का बंगाल में प्रकाटय हुआ था। प्रेम के बादल जीवन के आकाश पर छाये हुए थे और इनकी प्रेममयी बूँदों से बंगाल की भूमि पर विशेष प्रकार की आनन्दमयी तरंग उत्पन्न होगई थी। और जिन पर प्रेम की बूँदें पड़ती थीं वह कृत्य कृत्य हो जाते

थे। यह नियम है कि जब संसार में कोई अध्यात्म सूर्य उदय होता है तो चारों ओर अध्यात्म प्रकाश हो जाता है और जिन पर इस प्रकाश का प्रभाव पड़ता है वह प्रकाशित हो जाते हैं और सहस्रों और लाखों व्यक्तियों के जीवन अध्यात्मिक में परवर्तित हो जाते हैं। यही दशा उस समय बंगाल की थी। प्रेम और भक्ति का सूर्य उदय हो चुका था और सहस्रों की संख्या में ईश्वर के भक्त उत्पन्न हो गये थे।

रूप और सनातन दोनों भ्राता चेतन्य महा प्रभू की सेवा में उपस्थित हुये। भजन कीर्तन हो रहा था। समाधी की दशा व्यस्त थी, प्रेम का मंडल् बँध रहा था, सबके सब जो उस मन्डल में उपस्थित थे समाधिष्ट थे और यह दोनों भी आनन्दमय हो गये चैतन्य महाप्रभू की दृष्टि इन पर पड़ी और पूछा क्यों आये हो? दोनों अश्रुपात करते हुये चरणों पर पड़े।

नाम दान अब सतगुरु दीजै। काल सतावै स्वांसा छीजै॥
दुख पाया हम् निशदिन भारी। गही ओट स्वामी आप तिहारी॥
मांगें नाम न मांगें दाम। जस चाहौ तस दो हमें दान।
किनका नाम करें हमरा काज। हे सतगुरु तुम्हें हमरी लाज॥

चैतन्य स्वामी की आंख से स्वयं प्रेम के अश्रु निकले, उनको दीक्षा दी। कुछ दिवस सतसंग कराया। भक्ति मार्ग दिखाया और फिर कहने लगे रूप और सनातन! तुमको मालिक ने किसी विशेष कार्य के लिए बनाया है। जाओ बृज में! वहाँ तुमको प्रत्येक घास और पत्ते से उपदेश मिलेगा और तुम्हारी शिक्षा से असंख्य ईश्वर भक्त भक्ति मार्ग पर आरूढ़ होंगे।

गुरू का आदेश स्वीकार करके दोनों भाई बंगाल से उसी समय चल खड़े हुए और पग यात्रा करते हुए साधु भेष में मथुरा

जी के निकट आए। बृज भूमि वास्तव में सत्य प्रेम की भूमि थी। ज्यों ज्यों वह उसके निकट पहुँचते गए उनके मन में नवीन नवीन उमङ्ग और नवीन नवीन प्रसन्नता उत्पन्न होती गई।

मार्ग में दो चार ग्वाले गऊ चरा रहे थे। उन्होंने पूछा। ग्वालो! बृज भूमि कहाँ है। ग्वालों ने उत्तर दिया कि यही तो है वृज भूमि जहां कान्हा बंशी बजाया करते थे। दोनों भ्राताओं ने भूमि पर गिरकर उस पवित्र पुनीति भूमि को दंडवत प्रणाम किया। धन्य धन्य वह भूमि जहां कृष्ण चन्द्र ने लीला की थी। आगे चले। वृन्दादेवी का मन्दिर मिला, रात्रि को वहां विश्राम किया। कहावत है कि यह मन्दिर रूप और सनातन ही का स्थापन किया हुआ है। और चूँकि इनके विरक्त होने के पश्चात् ही उनका भतीजा भी साधू होकर उनकी खोज में वहां आ निकला था। उन्होंने उसको उस देवी के मन्दिर का पुजारी नियुक्त किया।

वृज भूमि में आकर रूप और सनातन पर विस्माधि की दशा आच्छादित हो गई। प्रत्येक समय समाधि अवस्था में रहा करते थे। बहुधा प्राणी इनसे मिलने के लिए आया करते थे और यह उनको भक्ति मार्ग का उपदेश देते रहते थे। एक समय राजा मानसिंह इनके दर्शन को आया और कहने लगा आज्ञा कीजिए मैं आपके रहन सहन की व्यवस्था करा दूँ वह खिलखिला कर हँसे और कहा। राजा! हमको मालिक के प्रेम के अतिरिक्त और किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।

यमनों का राज्य था फ़ारसी भाषा प्रचलित थी। उस समय फ़ारसी बोलना योग्यता और सभ्यता समझी जाती थी। राजा-मानसिंह इन साधुओं की भाषा और भक्ति भाव को देखकर

अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कहने लगा। यदि आप और कोई सेवा नहीं बताते तो मुझको दर्शन का लाभ क्या होगा ? उन्होंने उत्तर दिया, अच्छा ! तुझको यही स्वीकार है तो गोविन्ददेव जी का मन्दिर बनवादे राजा ने स्वीकार किया। उन दिनों आगरे का दुर्ग लाल पत्थर से निर्माण किया जा रहा था। राजा ने अकबर सम्राट से आज्ञाली और एक विशाल मन्दिर बनवाया जिसका केवल वेतन और सामिग्रीपर १३ लाख रुपये व्यय हुये थे। यह मन्दिर अब तक वृन्दावन में उपस्थित है और कला और कौशल के विचार से प्रसंशनीय है। इसके पश्चात् मोहम्मदशाह सम्राट के शाशन काल में राजा जैसिंह गोविन्दजी की मूर्ति जैपुर ले गया और वृन्दावन में दूसरी मूर्ती स्थापित की।

रूप सनातन वृन्दावन वासी हो गए। सम्पूर्ण समय कथा वार्ता में व्यतीत होता था। दोनों भाई संस्कृत के विद्वान भी थे। उन्होंने कुछ ही मास में ५ लाख श्लोक इनके ग्रन्थ अब तक उपस्थित हैं। उनके नाम हैं रस सिद्धांत, उज्ज्वल नीलमुनी, भक्त रस, भागवत अमृत आदि आदि हैं।

जब सम्पादन के कार्य से अवकाश मिला फिर वही वैराग्य और वृज की परिक्रमा की ओर आकर्षित हुये। जिस स्थान पर बैठ जाते थे दो दो दिन वहीं बैठे रहते थे। एक समय आप नन्दगांव बरसाने के निकट आये और वृक्ष की छाया में बैठकर कृष्णचन्द्र की बाल अवस्था के खेलों की लीलाओं का दृश्य देखने लगे। प्रेम उत्पन्न हो गया समाधिष्ठ हो गये। तीन दिवस तक उसी दशा में वहीं पड़े रहे। खाने पीने का विचार तक न आया। गांव में यह सूचना प्रसिद्ध हुई कि दो साधू आये हैं वह न कुछ खाते हैं न पीते हैं। एक अहीर के पुत्र को उनके

भोजन कराने का विचार उत्पन्न हुआ। थाल लेकर पहुँचा और हँसकर कहा कि तुम भी एक विचित्र व्यक्ति हो जो शरीरधारी होते हुये भी व्यर्थ इस प्रकार से रहते हो और नहीं तो संसार का उपकार ही करो और ग्राम के निकट चलकर ठहरो। यह बोले जब तुमको हमारा विचार उत्पन्न हुआ तो हमको अपने लिये कार्य करने की क्या आवश्यकता है ? लड़के ने उत्तर दिया कि जिस शक्ति ने आंख, कान नाक, हाथ, पाँव दिये हैं इनका कुछ मन्तव्य भी तो होगा। यों ही तो नहीं हैं।

इस घटना के पश्चात दोनों भ्राताओं ने किसी एक स्थान पर विश्राम भी नहीं किया। जहां जाते भजन कीर्तन करते रहते और प्राणियों को भक्ति मार्ग का उपदेश देते। यह कमंडल और कोपीन के अतिरिक्त कुछ नहीं रखते थे और कहा करते

"माया छाया एक सी बिरला जाने कोय।
भगता के पाछे लगे सनमुख भागे सोय॥

आगामी दशहरे का सतसंग दहली में

(ले०—परम दयाल फ़क़ीर साहब)

पथिक यात्रा में चला जा रहा है। मैं ही केवल एक पथिक नहीं हूँ वरन् हम समस्त जन पथिक हैं। कहाँ जा रहे हैं ? इस विषय का किसी को ज्ञान है किसी को नहीं है किन्तु यात्रा में सब ही हैं इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है। मैं बाल्य अवस्था से ही विचार किया करता था:—

कौन हूँ मैं कहाँ से आया किधर जाऊँगा।
कहाँ है वह सर्वाधार क्या उसको मैं पाऊँगा॥

इस क्रम में खोज की। जो कुछ अनुभव हुआ उसका वर्णन निष्कामता से करता रहता हूँ। मेरी यात्रा अभी समाप्त

नहीं हुई है थोड़ी सी शेष है। इसलिए आगामी दशहरे पर ११ अक्टूबर १९५९ को संसार के प्राणियों को बतलाना चाहता हूँ कि मुझ पर क्या बीता और यात्रा में मुझे क्या मिला और क्या क्या अनुभव हुये। मैंने अनेक यात्रायें विभिन्न स्थानों, देशों और मंडलों की कीं। इन यात्राओं में एक यात्रा शारीरिक जीवन की, द्वितीय मानसिक और तृतीय आत्मिक जीवन की हुई। यह तीनों जीवनों तथा अवस्थाओं से परे एक और जीवन अवस्था अर्थात् अस्तित्व है जिसका नाम सन्तों ने चौथा पद रक्खा हुआ है। वही यात्रा अभी तक समाप्त नहीं हुई यद्यपि चला जा रहा हूँ।

अभेद और अनर्वचनीय जीवन के समुद्र में तैरता रहता हूँ। चूँकि यह चतुर्थ अवस्था इन तीनों जीवनों का आधार है और शरीर स्थित है इसलिए विवशतः अस्तित्व में आकर इन तीनों के खेल में जल कुकुक्ट की भाँति तैरता अथवा यात्रा करता रहता हूँ। शरीर अभीतक क्यों स्थिति है मौज जाने।

अपने अनुभव अर्थात् यात्रा के वृतान्त को प्रगट करने का मन्तव्य क्या है इस पर विचार करता रहता हूँ। इसका उत्तर है विवशता। विभिन्न धर्म और पंथों के महापुरुषों की जीवन यात्रा के वृतान्त अथवा अनुभवों को कभी सुना करता था भिन्न भिन्न प्रकार के वर्णनों के कारण किसी एक की बात पर निश्चय रूप में विश्वास नहीं आता था इसलिये विवशतः यात्रा में स्वयं ही पदार्पण किया और हजूर दाता दयाल महऋषि शिववृतलाल जी महाराज और हजूर सांवले शाह की पवित्र पुनीति विभूति के आदेशानुसार यह सतसंग कराने का कार्य करता रहता हूँ। मैं प्रयत्न करूँगा कि अपने अनुभवों को सरल से सरल रूप में प्रेषित करूं।

जो प्रेमीजन तथा महापुरुष इस अवसर पर पधारने के इच्छुक हों वह प्रसन्नता पूर्वक आयें। ठहरने व भोजन का प्रबन्ध हिन्दू महासभा हाल में देहली की परमदयाल फ़क़ीर आत्मिक सतसंग सभा की ओर से गत वर्ष की भांति किया गया है। कृपया अपने बिस्तर अवश्य साथ में लाइये। १०–१०–५९ को पीरेमुग़ाँ साहब और स० दीवानसिंह सतसंग करायेंगे।

नोटः–परमदयाल जी महाराज १०–१०–५९ की संध्या की ५८ डाउन बम्बई ऐक्सप्रेस से नई देहली पधार कर और सतसंग भी करायेंगे। ११–१०–५९ को दोनों समय सतसंग होगा। और १२–१०–५९ को प्रातः सतसंग कराकर अलवर के सतसंगी भाइयों के आग्रह पर अलवर को प्रस्थान करेंगे और वहाँ प्रेमी भाई मिलावाराम टेलर मास्टर तांगा स्टैन्ड मार्केट अलवर के यहाँ सतसंग होगा। जो प्रेमी भाई इच्छुक हों वह वहाँ जाकर सतसंग का लाभ उठा सक्ते हैं।

नोटः–अक्टूबर मास का आगामी विशेषाङ्क बड़ा अनुपम और उपयोगी होगा, जो सज्जन मनुष्य बनो के १० ग्राहकों का मूल्य ३०) पेशगी भेजेंगे उन्हें पत्रिका एक वर्ष तक बिना मूल्य भेजी जायगी। इस सुविधा से लाभ उठाने वाले लाभ उठावें।

—:❀:—

❀ विषय सूची ❀

संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विषय सूची		१
२	हमारी बात	....	२
३	प्रार्थना	....	३
४	दातादयाल जी के बचन देहरादून		४
५	शब्द गुरु महाराज	....	१२
६	कर्मभोग अथवा मौज	परमदयाल फ़क़ीर साहब	१३
७	कर्म भोग अथवा देश की उन्नति	,,	१७
८	पत्रोत्तर परमदयाल का पत्र नन्दूभाई जी के नाम		२०
९	पत्रोत्तर परमदयाल का पत्र नन्दूभाई जी के नाम		२३
१०	कर्म भोग अथवा मौज	परमदयालजी महाराज	२५
११	गनपतलालजी का पत्र फ़क़ीर साहब के नाम		२९
१२	ज्ञान अज्ञान	दयाल स्वरूप नन्दू भाईजी	३१
१३	परमदयाल का पत्र गनपतलाल के नाम		३४
१४	ज पीरेमुर्शा साहब		४१
१५	दयाल के अनमोल वचन		४२
१६	र्मभोग अथवा मौज राधास्वामी तथा संतमत		४५
१७	ज्ञान की बातें	दातादयालजी महाराज	५८
१८	बड़ों का विनोद और हास्य		५९
१९	Nehru is hale and hearty		६५

हमारी बात स्मरण रखिये

करने वालों के लिये, दुनियां में कुछ मुशकिल नहीं।
क्या करें हैरान हैं, क़ाबू में अपने दिल नहीं॥
ऐ पकड़ने वालो, अपने दिल को क़ाबू में करो।
दिल अगर क़ाबू नहीं, फिर देख तू ख़ुशदिल नहीं॥
दिल अगर है हाथ में दिल्दार दिलवर साथ हैं।
दिल न हो जब हाथ में, क्या हाथ आये हाथ में॥

यह हमारे आठवें वर्ष का प्रथम अङ्क विशेषांक है। यह क्या है? यह भी तो मन ही का खेल है हम अपनी और आपकी सेवा तन मन से कर रहे हैं यह गुरू महाराज ही की कृपा है वरन् काग़ज की मंहगाई के इस युग में आप कोकोई भी ३) रु० वार्षिक मूल्य में इतना सस्ता शानदार लिट्रेचर नहीं दे सकता डाक महसूल में निकल जाते हैं ग्राहक संख्या आप बढ़ाते नहीं। फिर सोचिये! हम अकेले चने किस प्रकार भाड़ को फोड़ें। गत वर्ष समाप्त हुआ नवीन वर्ष चालू है। प्रेमी पाठकगण न तो मूल्य ही भेजते हैं। और न बन्द ही करने के लिये सूचित करते हैं। क्या करें! इसलिये हैरान होते हैं। उसी से पुकार करते हैं:

दिल से आता है सदा, मायूस तू हरगिज़ न हो।
काम तेरे सब बनेंगे, अच्छे फ़ज़ले पीर से॥
जिस जगह तक़दीर, और तदबीर, सब बेकार हों।
होती है मुशकिल कुशाई, सिर्फ़ महरे पीर से॥

सच्चे दिल की पुकार सुनी जाती है। काम बनता है। आप ही आप सब कुछ करते हैं कराते हैं। यह उनकी मौज नहीं तो और क्या है? यह अपना धर्म नहीं तो और क्या है? जिसे धारण कर रक्खा है वह आप रक्षक है धर्म का काम जब सब से उत्तम है शुभ है और उच्च है तो फिर आप सज्जन क्यों नहीं सहयोग देते। क्यों नहीं इसका प्रचार करते। क्या आप दो दो ग्रहक भी नहीं दे सक्ते? दे सकते हैं परन्तु इधर ध्यान नहीं है। यह जानते हुये कि ध्यान और धर्म ही लोक और परलोक में काम आवेगा फिर भी नहीं जानते मानते।

फ़ानी है हुसने बुत, क्या मैं जानता नहीं।
मुशकिल यह आ पड़ी है, कि जो मानता नहीं॥

सोचिये समझिये और इस ओर ध्यान दीजिए आपका भला, परिवार का भला और देश का भला इसी में है। मनुष्य बनो और मनुष्य बनाओ। परमदयाल के फिर गुन गाओ। फिर आप देखें कि सतगुरु आप का कल्याण करेंगे और आप सदा सुखी रहेंगे।